है, परन्तु सविशेषवादी भक्त तो सागर में विचरने वाले जलचर के समान अपना निजी स्वरूप बनाए रखते हैं। सागर के अन्तराल में कितने ही जलचर हैं। इसलिए केवल सागर के ऊपरी भाग से परिचित होना पर्याप्त नहीं; उसके अन्तर में रहने वाले जलचरों का भी पूर्ण ज्ञान होना चाहिए।

शुद्ध भक्तियोग के प्रभाव से भक्त श्रीभगवान् के दिव्य गुणों और विभूतियों के तत्त्व को जान सकता है। जैसा ग्यारहवें अध्याय में कहा है, केवल भक्तियोग से श्रीभगवान् को जाना जा सकता है; उसी सत्य की यहाँ पुष्टि है। भक्तियोग के द्वारा श्रीभगवान् को जानकर उनके धाम में प्रवेश किया जा सकता है।

देहात्मबुद्धि से मुक्त ब्रह्मभूत अवस्था की प्राप्ति हो जाने पर, श्रवण आदि साधनों के रूप में भगवद्भक्तियोग का प्रारम्भ होता है। भगवत्कथा के श्रवण से ब्रह्मभूत अवस्था अपने-आप विकसित हो उठती है तथा लोभ और इन्द्रियतृप्ति की कामनारूपी प्राकृत दोष दूर हो जाते हैं। जैसे-जैसे काम और लोभ से भक्त का हृदय शुद्ध होता है, वैसे-वैसे वह भगवत्सेवा में अधिक-अधिक आसक्त होता जाता है। शनैः शनैः इस आसक्ति के प्रभाव से पूर्णरूप में दोषमुक्त हो जाता है। उस अवस्था में श्रीभगवान् को तत्त्व से जाना जा सकता है। श्रीमद्भागवत से यह प्रमाणित है। मुक्तावस्था में भी भक्तियोग निर्बाध बना रहता है। वेदान्तसूत्र में प्रमाण हैः **आप्रायणात् तत्रापि हि दृष्टम्।** तात्पर्य यह है कि मुक्ति के बाद भी भक्ति योग चलता है। श्रीमद्भागवत के अनुसार सच्ची मुक्ति वह भक्तिमयी अवस्था है, जिसमें जीव अपने नित्य स्वरूप को फिर प्राप्त हो जाय। जीवस्वरूप का वर्णन पूर्व में हुआ है—वह श्रीभगवान् का भिन्न-अंश है। अतः सेवा करना उसकी स्वरूप-स्थिति है। मुक्ति हो जाने पर भी यह सेवा कभी नहीं रुकती। यथार्थ मुक्ति तो अविद्या से छूट जाना है।

सर्वकर्माण्यपि सदा कुर्वाणो मद्व्यपाश्रयः।
मत्प्रसादादवाप्नोति शाश्वतं पदमव्ययम्।।५६।।

सर्वकर्माणि=सब कर्मों को; **अपि**=भी; **सदा**=निरन्तर; **कुर्वाणः**=करता हुआ; **मत्**=मेरे; **व्यपाश्रयः**=आश्रित हुआ (निष्कामभक्त), **मत्**=मेरी; **प्रसादात्**=कृपा से; **अवाप्नोति**=प्राप्त हो जाता है; **शाश्वतम्**=सनातन; **पदम्**=धाम को; **अव्ययम्**=अविनाशी।

अनुवाद

मेरा आश्रित निष्काम भक्त तो सब प्रकार के कर्मों को करता हुआ भी मेरी कृपा से सनातन अविनाशी परम धाम को प्राप्त हो जाता है।।५६।।

तात्पर्य

मद्व्यपाश्रयः शब्द का तात्पर्य है कि भक्त को सदा श्रीभगवान् का वात्सल्यमय संरक्षण प्राप्त रहता है। शुद्धभक्त प्राकृत दोषों से मुक्ति के लिए भगवान् अथवा उनके प्रतिनिधि, गुरुदेव के निर्देश के अनुसार कर्म करता है। उसकी भगवत्सेवा में देश-काल